अध्याय - ९

विदा होते समय बाबा की आज्ञा का पालन और अवज्ञा करने के परिणामों के कुछ उदाहरण, भिक्षा वृत्ति और उसकी आवश्यकता, भक्तों (तर्खड कुटुम्ब) के अनुभव।

गत अध्याय के अन्त में केवल इतना ही संकेत किया गया था कि लौटते समय जिन्होंने बाबा के आदेशों का पालन किया, वे सकुशल घर लौटे और जिन्होंने अवज्ञा की, उन्हें दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ा। इस अध्याय में यह कथन अन्य कई पुष्टिकारक घटनाओं और अन्य विषयों के साथ विस्तारपूर्वक समझाया जायेगा।

शिरडी यात्रा की विशेषता

शिरडी यात्रा की एक विशेषता यह थी कि बाबा की आज्ञा के बिना कोई भी शिरडी से प्रस्थान नहीं कर सकता था और यदि किसी ने किया भी, तो मानो उसने अनेक कष्टों को निमंत्रण दे दिया। परन्तु यदि किसी को शिरडी छोड़ने की आज्ञा हुई तो फिर वहाँ उसका ठहरना नहीं हो सकता था। जब भक्तगण लौटने के समय बाबा को प्रणाम करने जाते तो बाबा उन्हें कुछ आदेश दिया करते थे, जिनका पालन अति आवश्यक था। यदि इन आदेशों की अवज्ञा कर कोई लौट गया तो निश्चय ही उसे किसी न किसी दुर्घटना का सामना करना पड़ता था। ऐसे कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।

तात्या कोते पाटील

एक समय तात्या कोते पाटील ताँगे में बैठकर कोपरगाँव के बाजार को जा रहे थे। वे शीघ्रता से मसजिद में आये। बाबा को नमन किया और कहा कि मैं कोपरगाँव के बाजार को जा रहा हूँ। बाबा ने कहा, "शीघ्रता न करो, थोड़ा ठहरो। बाजार जाने का विचार छोड़ दो और गाँव के बाहर न जाओ।" उनकी उतावली को देखकर बाबा ने

कहा, "अच्छा, कम से कम शामा को तो साथ लेते जाओ।" बाबा की आज्ञा की अवहेलना करके उन्होंने तुरन्त ताँगा आगे बढ़ाया। ताँगे के दो घोड़ों में से एक घोड़ा, जिसका मूल्य लगभग तीन सौ रुपया था, अति चंचल और द्रुतगामी था। रास्ते में सावली विहीर ग्राम पार करने के पश्चात् ही वह अधिक वेग से दौड़ने लगा। अकस्मात् ही उसकी कमर में मोच आ गई। वह वहीं गिर पड़ा। यद्यपि तात्या को अधिक चोट तो न आई, परन्तु उन्हें अपनी साई माँ के आदेशों की स्मृति अवश्य हो आई। एक अन्य अवसर पर कोल्हार ग्राम को जाते हुए भी उन्होंने बाबा के आदेशों की अवज्ञा की थी और ऊपर वर्णित घटना के समान ही दुर्घटना का उन्हें सामना करना पड़ा था।

एक यूरोपियन महाशय

एक समय बम्बई के एक यूरोपियन महाशय, नानासाहेब चांदोरकर से परिचय-पत्र प्राप्त कर किसी विशेष कार्य से शिरडी आये। उन्हें एक आलीशान तम्बू में ठहराया गया। वे तो बाबा के समक्ष नत होकर करकमलों का चुम्बन करना चाहते थे। इसी कारण उन्होंने तीन बार मसजिद की सीढ़ियों पर चढ़ने का प्रयत्न किया; परन्तु बाबाने उन्हें अपने समीप आने से रोक दिया। उन्हें आँगन में ही ठहरने और वहीं से दर्शन करने की आज्ञा मिली। इस विचित्र स्वागत से अप्रसन्न होकर उन्होंने शीघ्र ही शिरडी से प्रस्थान करने का विचार किया और बिदा लेने के हेतु वे वहाँ आये। बाबा ने उन्हें दूसरे दिन जाने और शीघ्रता न करने की राय दी। अन्य भक्तों ने भी उनसे बाबा के आदेश का पालन करने की प्रार्थना की। परन्तु वे सब की उपेक्षा कर ताँगे में बैठकर रवाना हो गये। कुछ दूर तक तो घोड़े ठीक-ठीक चलते रहे। परन्तु सावली विहीर नामक गाँव पार करने पर एक बाइसिकिल सामने से आई, जिसे देखकर घोड़े भयभीत हो गये और द्रुत गति से दौड़ने लगे। फलस्वरूप ताँगा उलट गया और महाशय जी नीचे लुढ़क गये और कुछ दूर तक ताँगे के साथ-साथ घिसटते चले गये। लोगों ने तुरन्त ही दौड़कर उन्हें बचा लिया, परन्तु चोट अधिक आने के कारण उन्हें कोपरगाँव के अस्पताल में शरण लेनी पड़ी। इस घटना से भक्तों ने शिक्षा ग्रहण की कि जो बाबा के आदेशों की अवहेलना करते हैं, उन्हें किसी न किसी प्रकार की दुर्घटना का शिकार होना ही पड़ता है और जो आज्ञा का पालन करते हैं, वे सकुशल और सुखपूर्वक घर पहुँच जाते हैं।

भिक्षावृत्ति की आवश्यकता

अब हम भिक्षावृत्ति के प्रश्न पर विचार करेंगे। संभव है, कुछ लोगों के मन में सन्देह उत्पन्न हो कि जब बाबा इतने श्रेष्ठ पुरुष थे तो फिर उन्होंने आजीवन भिक्षावृत्ति पर ही क्यों निर्वाह किया?

इस प्रश्न को दो दृष्टिकोण समक्ष रख कर हल किया जा सकता है।

पहला दृष्टिकोण — भिक्षावृत्ति पर निर्वाह करने का कौन अधिकारी है?

शास्त्रानुसार वे व्यक्ति, जिन्होंने तीन मुख्य आसक्तियों - (१) कामिनी, (२) कांचन और (३) कीर्त्ति का त्याग कर, आसक्ति-मुक्त हो संन्यास ग्रहण कर लिया हो - वे ही भिक्षावृत्ति के उपयुक्त अधिकारी हैं, क्योंकि वे अपने गृह में भोजन तैयार कराने का प्रबन्ध नहीं कर सकते। अतः उन्हें भोजन कराने का भार गृहस्थों पर ही है। श्री साईबाबा न तो गृहस्थ थे और न वानप्रस्थी। वे तो बालब्रह्मचारी थे। उनकी यह दृढ़ भावना थी कि विश्व ही मेरा गृह है। वे तो स्वयं ही भगवान् वासुदेव, विश्वपालनकर्ता तथा परब्रह्म थे। अतः वे भिक्षा-उपार्जन के पूर्ण अधिकारी थे।

दूसरा दृष्टिकोण

पंचसूना — (पाँच पाप और उनका प्रायश्चित):- सब को यह ज्ञात है कि भोजन सामग्री या रसोई बनाने के लिये गृहस्थाश्रमियों को पाँच प्रकार की क्रियाएँ करनी पड़ती हैं - (१) कंडणी (पीसना) (२) पेषणी (दलना) (३) उदकुंभी (बर्तन मलना) (४) मार्जनी (माँजना और धोना) (५) चूली (चूल्हा सुलगाना)।

इन क्रियाओं के परिणामस्वरूप अनेक कीटाणुओं और जीवों का नाश होता है और इस प्रकार गृहस्थाश्रमियों को पाप लगता है। इन पापों के प्रायश्चित स्वरूप शास्त्रों ने पाँच प्रकार के याग (यज्ञ) करने की आज्ञा दी है, अर्थात् (१) ब्रह्मयज्ञ अर्थात् वेदाध्ययन - ब्रह्म को अर्पण करना या वेद का अध्ययन करना (२) पितृयज्ञ - पूर्वजों को दान (३) देवयज्ञ - देवताओं को बलि (४) भूतयज्ञ - प्राणियों को दान (५) मनुष्य (अतिथि) यज्ञ - मनुष्यों (अतिथियों) को दान।

यदि ये कर्म विधिपूर्वक शास्त्रानुसार किये जायें तो चित्त शुद्ध होकर ज्ञान और आत्मानुभूति की प्राप्ति सुलभ हो जाती है। बाबा द्वार-द्वार पर जाकर गृहस्थाश्रमियों को इस पवित्र कर्त्तव्य की स्मृति दिलाते रहते थे और वे लोग अत्यन्त भाग्यशाली थे, जिन्हें घर बैठे ही बाबा से शिक्षा ग्रहण करने का अवसर मिल जाता था।

भक्तों के अनुभव

अब हम अन्य मनोरंजक विषयों का वर्णन करते हैं। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है - **"जो मुझे भक्तिपूर्वक केवल एक पत्र, फूल, फल या जल भी अर्पण करता है तो मैं उस शुद्ध अन्तःकरण वाले भक्त के द्वारा अर्पित की गई वस्तु को सहर्ष स्वीकार कर लेता हूँ।"**[१] यदि भक्त सचमुच में श्री साईबाबा को कुछ भेंट देना चाहता था और बादमें यदि उसे अर्पण करने की विस्मृति भी हो गई तो बाबा उसे या उसके मित्र द्वारा उस भेंट की स्मृति कराते और भेंट देने के लिये कहते तथा भेंट प्राप्त कर उसे आशीष देते थे। नीचे कुछ ऐसी ही घटनाओं का वर्णन किया जाता है।

तर्खड कुटुम्ब (पिता और पुत्र)

श्री. रामचन्द्र आत्माराम उपनाम बाबासाहेब तर्खड पहले प्रार्थनासमाजी थे। तथापि वे बाबा के परम भक्त थे। उनकी स्त्री और पुत्र तो बाबा के एकनिष्ठ भक्त थे। एक बार उन्होंने ऐसा निश्चय किया कि पुत्र व उसकी माँ ग्रीष्मकालीन छुट्टियाँ शिरडी में ही व्यतीत करें। परन्तु पुत्र बाँद्रा छोड़ने को सहमत न हुआ। उसे भय था कि बाबा का पूजन घर में विधिपूर्वक न हो सकेगा, क्योंकि पिताजी प्रार्थना-समाजी हैं और संभव है कि वे श्रीसाईबाबा के पूजनादि का उचित ध्यान न रख सकें। परन्तु पिता के आश्वासन देने पर कि पूजन यथाविधि ही होता रहेगा, माँ और पुत्र ने एक शुक्रवार की रात्रि में शिरडी को प्रस्थान कर दिया।

दूसरे दिन शनिवार को श्रीमान् तर्खड ब्रह्म मुहूर्त में उठे और स्नानादि कर, पूजन प्रारम्भ करने के पूर्व, बाबा के समक्ष साष्टांग दण्डवत् करके बोले - "हे बाबा! मैं ठीक वैसा ही आपका पूजन करता रहूँगा, जैसे कि मेरा पुत्र करता रहा है, परन्तु कृपा कर इसे शारीरिक परिश्रम तक ही सीमित न रखना।" ऐसा कहकर उन्होंने पूजन आरम्भ किया और मिश्री का नैवेद्य अर्पित किया, जो दोपहर के भोजन के समय प्रसाद के रूप में वितरित कर दिया गया।

उस दिन की सन्ध्या तथा अगला दिन इतवार भी निर्विघ्न व्यतीत हो गया। सोमवार को उन्हें ऑफिस जाना था, परन्तु वह दिन भी निर्विघ्न निकल गया। श्री. तर्खड ने इस

---

१. पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मन॥ गीता ९॥२६॥

प्रकार अपने जीवन में कभी पूजा न की थी। उनके हृदय में अति सन्तोष हुआ कि पुत्र को दिये गये वचनानुसार पूजा यथाक्रम संतोषपूर्वक चल रही है। अगले दिन मंगलवार को सदैव की भाँति उन्होंने पूजा की और ऑफिस को चले गये। दोपहर को घर लौटने पर जब वे भोजन को बैठे तो थाली में प्रसाद न देखकर उन्होंने अपने रसोइये से इस सम्बन्ध में प्रश्न किया। उसने बतलाया कि आज विस्मृतिवश वे नैवेद्य अर्पण करना भूल गये हैं। यह सुनकर वे तुरन्त अपने आसन से उठे और बाबा को दण्डवत् कर क्षमा याचना करने लगे तथा बाबा से उचित पथ-प्रदर्शन न करने तथा पूजन को केवल शारीरिक परिश्रम तक ही सीमित रखने के लिये उलाहना देने लगे। उन्होंने संपूर्ण घटना का विवरण अपने पुत्र को पत्र द्वारा सूचित किया और उससे प्रार्थना की कि वह पत्र बाबा के श्री चरणों पर रखकर उनसे कहना कि वे इस अपराध के लिये क्षमाप्रार्थी हैं। यह घटना बाँद्रा में लगभग दोपहर को हुई थी और उसी समय शिरडी में जब दोपहर की आरती प्रारम्भ होने ही वाली थी कि बाबा ने श्रीमती तर्खड से कहा- "माँ, मैं कुछ भोजन पाने के विचार से तुम्हारे घर बाँद्रा गया था, द्वार में ताला लगा देखकर भी मैंने किसी प्रकार गृह में प्रवेश किया। परन्तु वहाँ देखा कि भाऊ (श्री. तर्खड) मेरे लिये कुछ भी खाने को नहीं रख गये हैं। अतः आज मैं भूखा ही लौट आया हूँ।" किसी को भी बाबा के वचनों का अभिप्राय समझ में नहीं आया; परन्तु उनका पुत्र जो समीप ही खड़ा था, सब कुछ समझ गया कि बाँद्रा में पूजन में कुछ तो भी त्रुटि हो गई है; इसलिये वह बाबा से लौटने की अनुमति माँगने लगा। परन्तु बाबा ने आज्ञा न दी और वहीं पूजन करने का आदेश दिया। उनके पुत्र ने शिरडी में जो कुछ हुआ, उसे पत्र में लिख कर पिता को भेजा और भविष्य में पूजन में सावधानी बर्तने के लिये विनती की। दोनों पत्र डाक द्वारा दूसरे दिन दोनों पक्षों को मिले। क्या यह घटना आश्चर्यपूर्ण नहीं है?

श्रीमती तर्खड

एक समय श्रीमती तर्खड ने तीन वस्तुएँ अर्थात् (१) भरित (भुर्ता यानी मसाला मिश्रित भुना हुआ बैगन और दही) (२) काचर्या (बैगन के गोल टुकड़े घी में तले हुए) और (३) पेड़ा (मिठाई) बाबा के लिये भेजी। बाबा ने उन्हें किस प्रकार स्वीकार किया, इसे अब देखेंगे।

बाँद्रा के श्री रघुवीर भास्कर पुरंदरे बाबा के परम भक्त थे। एक समय वे शिरडी को जा रहे थे। श्रीमती तर्खड ने श्रीमती पुरंदरे को दो बैगन दिये और उनसे प्रार्थना की कि शिरडी पहुँचने पर वे एक बैगन का भुर्ता और दूसरे का काचर्या बनाकर बाबा को भेंट

कर दें। शिरडी पहुँचने पर श्रीमती पुरंदरे भुर्ता लेकर मसजिद को गईं। बाबा उसी समय भोजन को बैठे ही थे। बाबा को वह भुर्ता बड़ा स्वादिष्ट प्रतीत हुआ, इस कारण उन्होंने थोड़ा-थोड़ा सभी को वितरित किया। इसके पश्चात् ही बाबा ने काचर्या लाने को कहा। राधाकृष्णमाई के पास सन्देशा भेजा गया कि बाबा काचर्या माँग रहे हैं। वे बड़े असमंजस में पड़ गईं कि अब क्या करना चाहिये? बैगन की तो अभी ऋतु ही नहीं है। अब समस्या उत्पन्न हुई कि बैगन किस प्रकार उपलब्ध हो। जब इस बात का पता लगाया गया कि भुर्ता लाया कौन था? तब ज्ञात हुआ कि बैगन श्रीमती पुरंदरे लाई थीं तथा उन्हें ही काचर्या बनाने का कार्य सौंपा गया था। अब प्रत्येक को बाबा की इस पूछताछ का अभिप्राय विदित हो गया और सब को बाबा की सर्वज्ञता पर महान् आश्चर्य हुआ।

दिसम्बर, सन् १९१५ में श्री गोविन्द बालाराम मानकर शिरडी जाकर वहाँ अपने पिता की अन्त्येष्टि-क्रिया करना चाहते थे। प्रस्थान करने से पूर्व वे श्रीमती तर्खड से मिलने आये। श्रीमती तर्खड बाबा के लिये कुछ भेंट शिरडी भेजना चाहती थीं। उन्होंने पूरा घर छान डाला, परन्तु केवल एक पेड़े के अतिरिक्त कुछ न मिला और वह पेड़ा भी अर्पित नैवेद्य का था। बालक गोविन्द ऐसी परिस्थिति देखकर रोने लगा। परन्तु फिर भी अति प्रेम के कारण वही पेड़ा बाबा के लिये भेज दिया। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि बाबा उसे अवश्य स्वीकार कर लेंगे। शिरडी पहुँचने पर गोविन्द मानकर बाबा के दर्शनार्थ गये, परन्तु वहाँ पेड़ा ले जाना भूल गये। बाबा यह सब चुपचाप देखते रहे। परन्तु जब वह पुनः सन्ध्या समय बिना पेड़ा लिये हुए वहाँ पहुँचा तो फिर बाबा शान्त न रह सके और उन्होंने पूछा कि "तुम मेरे लिये क्या लाये हो?" उत्तर मिला- "कुछ नहीं।" बाबा ने पुनः प्रश्न किया और उसने वही उपर्युक्त उत्तर फिर दुहरा दिया। अब बाबा ने स्पष्ट शब्दों में पूछा, "क्या तुम्हें माँ (श्रीमती तर्खड) ने चलते समय कुछ मिठाई नहीं दी थी?" अब उसे स्मृति हो आई और वह बहुत ही लज्जित हुआ तथा बाबा से क्षमा-याचना करने लगा। वह दौड़कर शीघ्र ही वापस गया और पेड़ा लाकर बाबा के सम्मुख रख दिया। बाबा ने तुरन्त ही पेड़ा खा लिया। इस प्रकार श्रीमती तर्खड की भेंट बाबा ने स्वीकार की और "भक्त मुझ पर विश्वास करता है, इसलिये मैं स्वीकार कर लेता हूँ।" -यह भगवद्वचन सिद्ध हुआ।

बाबा का सन्तोषपूर्वक भोजन

एक समय श्रीमती तर्खड शिरडी आई हुई थीं। दोपहर का भोजन प्रायः तैयार हो

चुका था और थालियाँ परोसी ही जा रही थीं कि उसी समय वहाँ एक भूखा कुत्ता आया और भोंकने लगा। श्रीमती तर्खड तुरन्त उठीं और उन्होंने रोटी का एक टुकड़ा कुत्ते को डाल दिया। कुत्ता बड़ी रुचि के साथ उसे खा गया। सन्ध्या के समय जब वे मसजिद में जाकर बैठीं तो बाबा ने उनसे कहा, ''माँ! आज तुमने बड़े प्रेम से मुझे खिलाया, मेरी भूखी आत्मा को बड़ी सान्त्वना मिली है। सदैव ऐसा ही करती रहो, तुम्हें कभी न कभी इसका उत्तम फल अवश्य प्राप्त होगा। इस मसजिद में बैठकर मैं कभी असत्य नहीं बोलूँगा। सदैव मुझ पर ऐसा ही अनुग्रह करती रहो। पहले भूखों को भोजन कराओ, बाद में तुम भोजन किया करो। इसे अच्छी तरह ध्यान में रखो।'' बाबा के शब्दों का अर्थ उनकी समझ में न आया, इसलिये उन्होंने प्रश्न किया, ''भला! मैं किस प्रकार भोजन करा सकती हूँ? मैं तो स्वयं दूसरों पर निर्भर हूँ और उन्हें दाम देकर भोजन प्राप्त करती हूँ।'' बाबा कहने लगे, ''उस रोटी को ग्रहण कर मेरा हृदय तृप्त हो गया है और अभी तक मुझे डकारें आ रही हैं। **भोजन करने से पूर्व तुमने जो कुत्ता देखा था और जिसे तुमने रोटी का टुकड़ा दिया था, वह यथार्थ में मेरा ही स्वरूप था और इसी प्रकार अन्य प्राणी (बिल्लियाँ, सुअर, मक्खियाँ, गाय आदि) भी मेरे ही स्वरूप हैं। मैं ही उनके आकारों में डोल रहा हूँ। जो इन सब प्राणियों में मेरा दर्शन करता है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। इसलिये द्वैत या भेदभाव भूल कर तुम मेरी सेवा किया करो।''**[१]

इस अमृत तुल्य उपदेश को ग्रहण कर वे द्रवित हो गईं और उनकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी, गला रुँध गया और उनके हर्ष का पारावार न रहा।

शिक्षा

''समस्त प्राणियों में ईश्वर-दर्शन करो'' – यही इस अध्याय की शिक्षा है। उपनिषद्, गीता और भागवत का यही उपदेश है कि ईशावास्यमिदं सर्वम् – ''सब प्राणियों में ही ईश्वर का वास हैं, इसका प्रत्यक्ष अनुभव करो।''

अध्याय के अन्त में बतलाई गई घटना तथा अन्य अनेक घटनायें, जिनका लिखना अभी शेष है, स्वयं बाबा ने प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत कर दिखाया कि किस प्रकार उपनिषदों की शिक्षा को आचरण में लाना चाहिये।

इसी प्रकार श्री साईबाबा शास्त्रग्रंथों की शिक्षा दिया करते थे।

॥ श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

---

१. यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ – गीता अ. ६, श्लोक ३०

अध्याय – १०

श्री साईबाबा का रहन सहन, शयन पटिया, शिरडी में निवास, उनके उपदेश, उनकी विनयशीलता, सुगम पथ।

प्रारम्भ

श्री साईबाबा का सदा ही प्रेमपूर्वक स्मरण करो, क्योंकि वे सदैव दूसरों के कल्याणार्थ तत्पर तथा आत्मलीन रहते थे। उनका स्मरण करना ही जीवन और मृत्यु की पहेली हल करना है। साधनाओं में यह अति श्रेष्ठ तथा सरल साधना है, क्योंकि इसमें कोई द्रव्य व्यय नहीं होता। केवल मामूली परिश्रम से ही भविष्य नितान्त फलदायक होता है। जब तक इन्द्रियाँ बलिष्ठ हैं, क्षण-क्षण इस साधना को आचरण में लाना चाहिये। अन्य सब देवी-देवता तो भ्रमित करने वाले हैं, केवल गुरु ही ईश्वर हैं। हमें उनके ही पवित्र चरणकमलों में श्रद्धा रखनी चाहिये। वे तो हर इन्सान के भाग्यविधाता और प्रेममय प्रभु हैं। जो अनन्य भाव से उनकी सेवा करेंगे, वे भवसागर से निश्चय ही मुक्ति को प्राप्त होंगे। **न्याय अथवा मीमांसा या दर्शनशास्त्र पढ़ने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार नदी या समुद्र पार करते समय नाविक पर विश्वास रखते हैं, उसी प्रकार का विश्वास हमें भवसागर से पार होने के लिये सद्‌गुरु पर करना चाहिये।** सद्‌गुरु तो केवल भक्तों के भक्ति-भाव की ओर ही देखकर उन्हें ज्ञान और परमानन्द की प्राप्ति करा देते हैं।

गत अध्याय में बाबा की भिक्षावृत्ति, भक्तों के अनुभव तथा अन्य विषयों का वर्णन किया गया है। अब पाठकगण सुनें कि श्रीसाईबाबा किस प्रकार रहते, शयन करते और शिक्षा प्रदान करते थे।

बाबा का विचित्र बिस्तर

पहले हम यह देखेंगे कि बाबा किस प्रकार शयन करते थे। श्री नानासाहेब डेंगले

एक चार हाथ लम्बा और एक हथेली चौड़ा लकड़ी का तख्ता श्रीसाईबाबा के शयन के हेतु लाये। तख्ता कहीं नीचे रख कर उस पर सोते, ऐसा न कर बाबा ने पुरानी चिन्दियों से मसजिद की बल्ली से उसे झूले के समान बाँधकर उस पर शयन करना प्रारम्भ कर दिया।

चिन्दियों के बिलकुल पतली और कमजोर होने के कारण लोगों को उसका झूला बनाना एक पहेली-सा बन गया। चिन्दियाँ तो केवल तख्ते का भी भार वहन नहीं कर सकती थीं। फिर वे बाबा के शरीर का भार किस प्रकार सहन कर सकेंगी? जिस प्रकार भी हो, यह तो राम ही जानें, परन्तु यह तो बाबा की एक लीला थी; जो फटी चिन्दियाँ तख्ते तथा बाबा का भार सँभाल रही थीं। तख्ते के चारों कोनों पर दीपक रात्रि भर जला करते थे। बाबा को तख्ते पर बैठे या शयन करते हुए देखना, देवताओं को भी दुर्लभ दृश्य था। सब आश्चर्यचकित थे कि बाबा किस प्रकार तख्ते पर चढ़ते होंगे और किस प्रकार नीचे उतरते होंगे। कौतूहलवश लोग इस रहस्योद्घाटन के हेतु दृष्टि लगाये रहते थे, परंतु यह समझने में कोई भी सफल न हो सका और इस रहस्य को जानने के लिये भीड़ उत्तरोत्तर ही बढ़ने लगी। इस कारण बाबा ने एक दिन तख्ता तोड़कर बाहर फेंक दिया। यद्यपि बाबा को अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त थीं, परन्तु उन्होंने कभी भी उनका प्रयोग नहीं किया और न कभी उनकी ऐसी इच्छा ही हुई। वे तो स्वतः ही स्वाभाविक रूप से पूर्णता प्राप्त होने के कारण उनके पास आ गई थीं।

ब्रह्म का सगुण अवतार

बाह्यदृष्टिसे श्रीसाईबाबा साढ़े तीन हाथ लम्बे एक सामान्य पुरुष थे, फिर भी प्रत्येक के हृदय में वे विराजमान थे। अंदर से वे आसक्ति-रहित और स्थिर थे, परन्तु बाहर से जन-कल्याण के लिये सदैव चिन्तित रहते थे। अंदर से वे संपूर्ण रूप से निःस्वार्थी थे। भक्तों के निमित्त उनके हृदय में परम शांति विराजमान थी, परन्तु बाहर से वे अशान्त प्रतीत होते थे। वे अन्तस से ब्रह्मज्ञानी, परन्तु बाहर से संसार में उलझे हुए दिखलाई पड़ते थे। वे कभी प्रेमदृष्टि से देखते तो कभी पत्थर मारते, कभी गालियाँ देते और कभी हृदय से लगाते थे। वे गम्भीर, शान्त और सहनशील थे। वे सदा दृढ़ और आत्मलीन रहते थे और अपने भक्तों का सदैव उचित ध्यान रखते थे। वे सदा एक आसन पर ही विराजमान रहते थे। वे कभी यात्रा को नहीं निकले। उनका दंड एक छोटी सी लकड़ी थी, जिसे वे सदैव अपने पास सँभाल कर रखते थे। विचारशून्य होने के कारण वे शान्त थे। उन्होंने कांचन और कीर्त्ति की कभी चिन्ता नहीं की तथा सदा ही भिक्षावृत्ति

द्वारा निर्वाह करते रहे। उनका जीवन ही इस प्रकार का था। "अल्लाह मालिक" सदैव उनके होठों पर रहता था। उनका भक्तों पर विशेष और अटूट प्रेम था। वे आत्म-ज्ञान की खान और परम दिव्य स्वरूप थे। श्रीसाईबाबा का दिव्य स्वरूप इस तरह का था। एक अपरिमित, अनन्त, सत्य और अपरिवर्त्तनशील सिद्धान्त, जिसके अन्तर्गत यह सारा विश्व है, श्रीसाईबाबा में आविर्भूत हुआ था। यह अमूल्य निधि केवल सत्त्व गुण-सम्पन्न और भाग्यशाली भक्तों को ही प्राप्त हुई। जिन्होंने श्रीसाईबाबा को केवल मनुष्य या सामान्य पुरुष समझा या समझते हैं, वे यथार्थ में अभागे थे या हैं।

श्री साईबाबा के माता-पिता तथा उनकी जन्मतिथि का ठीक-ठीक पता किसी को भी नहीं है तो भी उनके शिरडी में निवास के द्वारा इसका अनुमान लगाया जा सकता है। जब पहलेपहल बाबा शिरडी में आये थे तो उस समय उनकी आयु केवल १६ वर्ष की थी। वे शिरडी में ३ वर्ष तक रहने के बाद फिर कुछ समय के लिये अंतर्द्धान हो गये। कुछ काल के उपरान्त वे औरंगाबाद के समीप (निजाम स्टेट) में प्रकट हुए और चाँद पाटील की बारात के साथ पुनः शिरडी पधारे। उस समय उनकी आयु २० वर्ष की थी। उन्होंने लगातार ६० वर्षों तक शिरडी में निवास किया और सन् १९१८ में महासमाधि ग्रहण की। इन तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि उनकी जन्म-तिथि सन् १८३८ के लगभग थी।

बाबा का ध्येय और उपदेश

सत्रहवीं शताब्दी (१६०८-१६८१) में सन्त रामदास प्रकट हुए और उन्होंने यवनों से गायों और ब्राह्मणों की रक्षा करने का कार्य पर्याप्त सीमा तक सफलतापूर्वक किया। परन्तु दो शताब्दियों के व्यतीत हो जाने के बाद हिन्दू और मुसलमानों में वैमनस्य बढ़ गया और इसे दूर करने के लिये ही श्रीसाईबाबा प्रगट हुए। उनका सभी के लिये यही उपदेश था कि "राम (जो हिन्दुओं का भगवान् है) और रहीम (जो मुसलमानों का खुदा है) एक ही हैं और उनमें किंचित् मात्र भी भेद नहीं है। फिर तुम उनके अनुयायी क्यों पृथक्-पृथक् रहकर परस्पर झगड़ते हो? अज्ञानी बालको! दोनों जातियाँ एकता साध कर और एक साथ मिलजुलकर रहो। शांत चित्त से रहो और इस प्रकार राष्ट्रीय एकता का ध्येय प्राप्त करो। कलह और विवाद व्यर्थ है। इसलिये न झगड़ो और न परस्पर प्राणघातक ही बनो। सदैव अपने हित तथा कल्याण का विचार करो। श्रीहरि तुम्हारी रक्षा अवश्य करेंगे। योग, वैराग्य, तप, ज्ञान आदि ईश्वर के समीप पहुँचने के मार्ग हैं। यदि तुम किसी तरह सफल साधक नहीं बन सकते तो तुम्हारा जन्म व्यर्थ है। तुम्हारी

कोई कितनी ही निन्दा क्यों न करे, तुम उसका प्रतिकार न करो। यदि कोई शुभ कर्म करने की इच्छा है तो सदैव दूसरों की भलाई करो।"[१]

संक्षेप में यही श्रीसाईबाबा का उपदेश है कि उपर्युक्त कथनानुसार आचरण करने से भौतिक तथा आंध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों में तुम्हारी प्रगति होगी।

सच्चिदानंद सद्गुरु श्रीसाईनाथ महाराज

गुरु तो अनेक हैं। कुछ गुरु ऐसे हैं, जो द्वार-द्वार हाथ में वीणा और करताल लिये अपनी धार्मिकता का प्रदर्शन करते फिरते हैं। वे शिष्यों के कानों मे मंत्र फूँकते और उनकी सम्पत्ति का शोषण करते हैं। वे ईश्वर भक्ति तथा धार्मिकता का केवल ढोंग ही रचते हैं। वे वस्तुतः अपवित्र और अधार्मिक होते हैं। श्रीसाईबाबा ने धार्मिक निष्ठा प्रदर्शित करने का विचार भी कभी मन में नहीं किया। दैहिक बुद्धि उन्हें किंचित्मात्र भी छू न गई थी। परन्तु उनमें भक्तों के लिए असीम प्रेम था। गुरु दो प्रकार के होते हैं:- (१) नियत और (२) अनियत। अनियत गुरु के आदेशों से अपने में उत्तम गुणों का विकास होता तथा चित्त की शुद्धि होकर विवेक की वृद्धि होती है। वे भक्ति-पथ पर लगा देते हैं। परन्तु नियत गुरु की संगति मात्र से द्वैत बुद्धि का ह्रास शीघ्र हो जाता है। गुरु और भी अनेक प्रकार के होते हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रकार की सांसारिक शिक्षायें प्रदान करते हैं। यथार्थ में जो हमें आत्मस्थित बनाकर इस भवसागर से पार उतार दे, वही सद्गुरु है। श्रीसाईबाबा उसी कोटि के सद्गुरु थे। उनकी महानता अवर्णनीय है। जो भक्त बाबा के दर्शनार्थ आते, उनके प्रश्न करने के पूर्व ही बाबा उनके समस्त जीवन की त्रिकालिक घटनाओं का पूरा-पूरा विवरण कह देते थे। वे समस्त भूतों में ईश्वर-दर्शन किया करते थे। मित्र और शत्रु उन्हें दोनों एक समान थे। वे निःस्वार्थी तथा दृढ़ थे। भाग्य और दुर्भाग्य का उन पर कोई प्रभाव न था। वे कभी संशयग्रस्त नहीं हुए। देहधारी होकर भी उन्हें देह की किंचित्मात्र आसक्ति न थी। देह तो उनके लिए केवल एक आवरण मात्र था। यथार्थ में तो वे नित्य मुक्त थे।

वे शिरडीवासी धन्य हैं, जिन्होंने श्रीसाईबाबा की ईश्वर-रूप में उपासना की। सोते-जागते, खाते-पीते, वाड़े या खेत तथा घर में अन्य कार्य करते हुए भी वे लोग सदैव उनका स्मरण तथा गुणगान करते थे। साईबाबा के अतिरिक्त दूसरा कोई ईश्वर वे मानते

१. अष्टादश पुराणेषुव्यासस्य वचनं द्वयं।
परोपकाराः पुण्याय पापाय पर पीड़नम्॥
"परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।" - तुलसी

ही न थे। शिरडी की नारियों के प्रेम की माधुरी का तो कहना ही क्या है! वे बिलकुल भोलीभाली थीं। उनका पवित्र प्रेम उन्हें ग्रामीण भाषा में भजन रचने की सदैव प्रेरणा देता रहता था। यद्यपि वे शिक्षित न थीं तो भी उनके सरल भजनों में वास्तविक काव्य की झलक थी। यह कोई विद्वत्ता न थी, वरन् उनका सच्चा प्रेम ही इस प्रकार की कविता का प्रेरक था। कविता तो सच्चे प्रेम का प्रगट स्वरूप ही है, जिसमें चतुर श्रोता-गण ही यथार्थ दर्शन या रसिकता का अनुभव करते हैं। सर्वसाधारण को इन लौकिक गीतों की बड़ी आवश्यकता है। शायद भविष्य में बाबा की कृपा से कोई भाग्यशाली भक्त गीतसंग्रह-कार्य अपने हाथ में लेकर इन गीतों को साईलीला पत्रिका में या पुस्तकरूप में प्रकाशित करवा दे।

बाबा की विनयशीलता

ऐसा कहते हैं कि भगवान् में छः प्रकार के विशेष गुण होते हैं - यथा (१) कीर्त्ति (२) श्री (३) वैराग्य (४) ज्ञान (५) ऐश्वर्य और (६) उदारता। श्रीसाईबाबा में भी ये सब गुण विद्यमान थे। उन्होंने भक्तों की इच्छा-पूर्ति के निमित्त ही सगुण अवतार धारण किया था। उनकी कृपा (दया) बड़ी ही विचित्र थी। वे भक्तों को स्वयं अपने पास आकर्षित करते थे। अन्यथा उन्हें कोई कैसे जान पाता? भक्तों के हेतु वे अपने श्रीमुख से ऐसे वचन कहते, जिनका वर्णन करने का सरस्वती भी साहस न कर सकतीं। उनमें से यहाँ पर एक रोचक नमूना दिया जाता है। बाबा अति विनम्रता से इस प्रकार बोलते "दासानुदास, मैं तुम्हारा ऋणी हूँ, तुम्हारे दर्शन मात्र से मुझे सान्त्वना मिली; यह तुम्हारा मेरे ऊपर बड़ा उपकार है कि जो मुझे तुम्हारे चरणों का दर्शन प्राप्त हुआ। तुम्हारे दर्शन कर मैं अपने को धन्य समझता हूँ।" कैसी विनम्रता है? यदि कोई यह सोचे कि इन वाक्यों को प्रकाशित करने से श्रीसाईबाबा की महानता को आँच पहुँची है तो मैं इसके लिये क्षमाप्रार्थी हूँ और इसके प्रायश्चित स्वरूप मैं साई नाम का कीर्त्तन तथा जप किया करता हूँ।

यद्यपि बाह्य दृष्टि से बाबा विषय-पदार्थोंका उपभोग करते हुए प्रतीत होते थे, परन्तु उन्हें किंचित्मात्र भी उनकी गन्ध न थी और न ही उनके उपभोग का ज्ञान था। वे खाते अवश्य थे, परन्तु उनकी जिह्वा को कोई स्वाद न था। वे नेत्रों से देखते थे, परन्तु उस दृश्य में उनकी कोई रुचि न थी। काम के सम्बन्ध में वे हनुमान सदृश अखंड ब्रह्मचारी थे। उन्हें किसी पदार्थ में आसक्ति न थी। वे शुद्ध चैतन्य स्वरूप थे, जहाँ समस्त इच्छाएँ, अहंकार और अन्य चेष्टाएँ विश्राम पाती थीं। संक्षेप में वे निःस्वार्थ, मुक्त और

पूर्ण ब्रह्म थे। इस कथन को समझने के हेतु एक रोचक कथा का उदाहरण यहाँ दिया जाता है।

नानावल्ली

शिरडी में नानावल्ली नाम का एक विचित्र और अनोखा व्यक्ति था। वह बाबा के सब कार्यों की देखभाल किया करता था। एक समय जब बाबा गादी पर विराजमान थे, वह उनके पास पहुँचा। वह स्वयं ही गादी पर बैठना चाहता था। इसलिये उसने बाबा को वहाँ से हटने को कहा। बाबा ने तुरन्त गादी छोड़ दी और तब नानावल्ली वहाँ विराजमान हो गया। थोड़े ही समय वहाँ बैठकर वह उठा और बाबा को अपना स्थान ग्रहण करने को कहा। बाबा पुनः आसन पर बैठ गये। यह देखकर नानावल्ली उनके चरणों पर गिर पड़ा और भाग गया। इस प्रकार अनायास ही आज्ञा दिये जाने और वहाँ से उठाये जाने के कारण बाबा में किंचित्मात्र भी अप्रसन्नता की झलक न थी।

सुगम पथः सन्तों की कथाओं का श्रवण करना और उनका समागम

यद्यपि बाह्य दृष्टि से श्रीसाईबाबा का आचरण सामान्य पुरुषों के सदृश ही था, परन्तु उनके कार्यों से उनकी असाधारण बुद्धिमत्ता और चतुराई स्पष्ट ही प्रतीत होती थी। उनके समस्त कर्म भक्तों की भलाई के निमित्त ही होते थे। उन्होंने कभी भी अपने भक्तों को किसी आसन या प्राणायाम के नियमों अथवा किसी उपासना का आदेश कभी नहीं दिया और न उनके कानों में कोई मन्त्र ही फूँका। उनका तो सभी के लिये यही कहना था कि **चातुर्य त्याग कर सदैव 'साई साई' यही स्मरण करो। इस प्रकार आचरण करने से समस्त बन्धन छूट जायेंगे और तुम्हें मुक्ति प्राप्त हो जायेगी।** पंचाग्नि, तप, त्याग, स्मरण, अष्टांग योग आदि का साध्य होना केवल ब्राह्मणों को ही सम्भव है, अन्य वर्णों के लिये नहीं।

मन का कार्य विचार करना है। बिना विचार किये वह एक क्षण भी नहीं रह सकता। यदि तुम उसे किसी विषय में लगा दोगे तो वह उसी का चिन्तन करने लगेगा और यदि उसे गुरु को अर्पण कर दोगे तो वह गुरु के सम्बन्ध में ही चिन्तन करता रहेगा। आप लोग बहुत ध्यानपूर्वक साई की महानता और श्रेष्ठता श्रवण कर ही चुके हैं। यह स्वाभाविक स्मरण और पूजन ही साई का कीर्त्तन है। सन्तों की कथा का स्मरण उतना कठिन नहीं, जितना कि अन्य साधनाओं का, जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। ये कथाएँ सांसारिक भय को निर्मूल कर आध्यात्मिक पथ पर आरूढ़ करती हैं। इसलिये इन कथाओं का हमेशा श्रवण और मनन करो तथा आचरण में भी लाओ। यदि इन्हें

कार्यान्वित किया गया तो न केवल ब्राह्मण, वरन् स्त्रियाँ और अन्य दलित जातियाँ भी शुद्ध और पावन हो जायेंगी। सांसारिक कार्यों में लगे रहने पर भी अपना चित्त साई और उनकी कथाओं में लगाये रहो। तब तो यह निश्चित है कि वे कृपा अवश्य करेंगे। यह मार्ग अति सरल होने पर भी क्या कारण है कि सब कोई इसका अवलम्बन नहीं करते? कारण केवल यह है कि ईश-कृपा के अभाववश लोगों में सन्त कथाएँ श्रवण करने की रुचि उत्पन्न नहीं होती। ईश्वर की कृपा से ही प्रत्येक कार्य सुचारु एवं सुंदर ढंग से चलता है। सन्तों की कथा का श्रवण ही सन्तसमागम सदृश है। सन्त-सान्निध्य का महत्व अति महान् है। उससे दैहिक बुद्धि, अहंकार और जन्म मृत्यु के चक्र से मुक्ति हो जाती है। हृदय की समस्त ग्रंथियाँ खुल जाती हैं और ईश्वर से मिलन हो जाता है, जोकि चैतन्यघन स्वरूप है। विषयों से निश्चय ही विरक्ति बढ़ती है तथा दुःखों और सुखों में स्थिर रहने की शक्ति प्राप्त हो जाती है और आध्यात्मिक उन्नति सुलभ हो जाती है। यदि तुम कोई साधन जैसे नामस्मरण, पूजन या भक्ति इत्यादि नहीं करते, परन्तु अनन्य भाव से केवल सन्तों के ही शरणागत हो जाओ तो वे तुम्हें आसानी से भवसागर के उस पार उतार देंगे। इसी कार्य के निमित्त ही सन्त विश्व में प्रगट होते हैं। पवित्र नदियाँ - गंगा, यमुना, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि जो संसार के समस्त पापों को धो देती हैं, वे भी सदैव इच्छा करती हैं कि कोई महात्मा अपने चरण-स्पर्श से हमें पावन करे। ऐसा सन्तों का प्रभाव है। गत जन्मों के शुभ कर्मों के फलस्वरूप ही श्रीसाई चरणों की प्राप्ति संभव है।

मैं श्रीसाई के मोह-विनाशक चरणों का ध्यान कर यह अध्याय समाप्त करता हूँ। उनका स्वरूप कितना सुन्दर और मनोहर है! मसजिद के किनारे पर खड़े हुए वे सब भक्तों को, उनके कल्याणार्थ उदी वितरण किया करते हैं। जो इस विश्व को मिथ्या मानकर सदा आत्मानंद में निमग्न रहते थे, ऐसे सच्चिदानंद श्रीसाईमहाराज के चरणकमलों में मेरा बार-बार नमस्कार है।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥